Reviews of Literature
ISSN No : 2347-2723
International Recognized Multidisciplinary Research Journal

ISSN 2347-2723 Impact Factor : 2.0210 (UIF) [Yr.2014] Volume - 3 | Issue - 6 | Jan - 2016

भक्ति काव्य का युगीन महत्त्व

प्रा. भगवान आदटराव
संतोष भीमराव पाटील महाविद्यालय,मंद्रुप,तहसील- द. सोलापुर,जि-सोलापुर.

***प्रस्तावना* :**

भक्तिकाव्य हिंदी साहित्य की मूल्य निधि है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस कालखंड को स्वर्णयुग माना गया है वह स्वर्णयुग भक्तिकाव्य के कारण ही है। दक्षिण भारत के अलवारों में निर्माण हुई, और रामानंद के माध्यम से उत्तर भारत में पहुँची भक्ति की इस धारा को जनमानस के अंतरंग तक पहुँचाने का श्रेय कबीर, दादू, रैदास, पीपा, सूरदास, नंददास, कुंभनदास, मीराबाई, कुतबन, मंझन, जायसी और गोस्वामी तुलसीदासजी को जाता हैं। इसमें कबीर, सूर, तुलसी और जायसी भक्तिकाव्य के आधारस्तंभ हैं। भक्ति निर्गुण निराकार परमात्मा की हो, या सगुण साकार परमात्मा की हो भक्ति ही रही है। परमात्मा को देखने का या परमात्मा के स्वरूप को मानने का दृष्टिकोण चाहे कैसा भी रहा हो उनका अंतिम लक्ष्य समसमान रहा है। हिमालय का पानी गंगा के प्रवाह में बहता है या यमुना के प्रवाह में बहता है यह महत्त्व का नहीं है। वह पानी है और सागर में समा जाना ही उसका अंतिम लक्ष्य होत है। ठीक उसी तरह हिंदी भक्तिकाव्य का और इन भक्त कवियों का अंतिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति कर रहा है। जीवात्मा के रूप में होनेवाले परमात्मा के ही छोटे अंश को परमात्मा में मिलाना था। उसे जन्म-मरण के कुचक्र से मुक्ति दिलाना था। हिन्दी का भक्तिकाव्य इसी प्रधान उद्देश्य का रहा है।

कवि अथवा साहित्यकार वर्तमान में जीता है, अतीत का सिंहावलोकन करता है। वह लिखता वर्तमान में है, परंतु उसकी दृष्टि भविष्य को भी देखती है इसलिए युगांतकारी साहित्यकारों का साहित्य आनेवाले युगों-युगों तक प्रासंगिक बना रहता है। साहित्य समाज का दर्पण है उसमें तत्कालीन परिस्थिति का अंकन होता है। साहित्य को तत्कालीन परिस्थितियों की उपज भी कहा गया है। प्रत्येक कालखंड की परिस्थितियाँ एवं परिवेश बदलता रहता है फिर भी कुछ तत्त्व एवं कुछ बातें ऐसी होती है वे भविष्य में बनी रहती है।

वह निर्विवाद सत्य है कि भक्तिकाव्य की निर्मिति तत्कालीन युग की माँग थी। तत्कालीन परिवेश की एक आवश्यकता थी। इस काल में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक सभी दृष्टि से डावाँडोल की स्थिति थी। किसी प्रकार का आदर्श लोगों के सामने नही रहा था। भय, आतंक, अन्याय और अनाचार के इस माहौल में लोग हतबल बने थे। ऐसी स्थिति में परमात्मा की शरण में जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रहा था। परमात्मा की शरण में जाने की लोगों की मूलत: मानसिकता रही है, प्राप्त परिस्थिति ने इस मानसिकता को अधिक पुष्टि दी और इस काल में भक्ति संप्रदाय विकसित हुए। इसके साथ-साथ भक्तिकाव्य का निर्माण हुआ। अध्यात्मदर्शन, आत्मा परमात्मा संबंध, परमात्मा से मिलन की उत्कटता भक्तिकाव्य का मुख्य उद्देश्य रहा है इसके साथ-साथ भक्तिकाव्य का निर्माण हुआ। अध्यात्मदर्शन, आत्मा परमात्मा संबंध, परमात्मा से मिलन की उत्कटता भक्तिकाव्य का मुख्य उद्देश्य रहा है इसके साथ-साथ भक्त कवियों ने सामाजिक पक्ष को भी छोड नहीं है। सामाजिक पक्ष का, समाज में फैले अज्ञान का अंधश्रध्दा का, धार्मिकता के नाम पर की जानेवाली लूट का और बाह्याडंबर का वर्णन कबीर के काव्य में अधिक है। तत्कालीन परिस्थिति में संदर्भ में अनुभव के माध्यम से कहे हुए कबीरदास जी के विचार आज भी सही एवं सार्थक है। भक्ति का आडम्बर करनेवाले चाहे हिंदू हो या मुस्लिम कबीरदास ने दोनों को फटकारा है। उन्हें ठुकरानेवाले कबीर स्पष्ट रूप से कहते है-

"मोको कहाँ ढूँढे बन्दे, मैं तो मेरे पास में।
ना मैं मस्जिद, ना मैं मंदिर ना काबे कैलास में।।"

उस वक्त कही हुई यह बात तत्कालीन परिवेश में जितनी सही और सार्थक थी, वह आज के परिवेश में भी उतनी ही सही और सार्थक है। परमात्मा किसी मंदिर में और किसी मस्जिद की चार दिवारी में बन्द नहीं रहता? परमात्मा जैसी सर्व शक्तिमान ताकद मनुष्य के द्वारा बनाये गये पत्थरों की चार दिवारी के अन्दर बन्द होक रहेगी भी कैसे? परंतु अंधश्रध्दा से पीछे लगे हुए हम नादान इस बात को समझते नहीं और उसकी खोज में दौडते रहते है। आज के वर्तमान समय में भी यह दृश्य दिखाई देता है कि हिन्दुओं का कुम्भ मेला हो या मुस्मिमों की हज यात्रा लाखों की तादात में लोग वहाँ इकट्ठा होते है और वहाँ के पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते है। इन लोगों की देखभाल और व्यवस्था के लिए सरकारी खजाने के करोडों रूपयें खर्च होते हैं। कबीर द्वारा कही हुई इस बात को लोग समझते और परमात्मा के नाम पर इधर उधर न दौडते तो सरकारी पैसा बचता और उसमें से जनता के हित की कुछ योजनाएँ साकार होती। परमात्मा के नाम पर इस प्रकर का आडम्बर करते रहने की अपेक्षा इन्सान में बैठे हुए परमात्मा की हम तलाश करते तो और अधिक सार्थक होता। ऐसा कबीरदास को लगता है, इसलिए वे कहते हैं-

"घट घट मे वह साँई रमता कटुक वचन मत बोलरे।
तो को पीव मिलेंगे, घूँगट का पट खोल रे।।"

ऐसी बात करनेवाले कबीर यह भी उपदेश करते है कि जिस परमात्मा की तुम्हें तलाश है वह तो हर जगह बैठा हुआ है। वह तो हमारे ही अंदर है परंतु हम उसे पहचानते नहीं। इसका कारण हमारी आँखों पर माया का पर्दा है। हम उस परदे को दूर करने की अपेक्षा कस्तुरीमृग जैसे भटक रहे है-

"कस्तुरी कुँडलि बसै, मृग ढूँढे बन माँहि।
ऐसे घट घट रमा है, दुनिया देखे नाही।।"

इन्सान के अन्दर बैठे हुए परमात्मा को पहचानो और 'जनसेवा को ही ईश सेवा' मानो ऐसा संदेश देनेवाले कबीर आज भी प्रासंगिक है कारण आज मानव के रूप में देखने की आवश्यकता निर्माण हुई है। पददलित अवस्था में जीवन जीनेवालों के प्रति सहानुभूति दिखाने की आवश्यकता है। बाह्याडंबर करके व्यर्थ में पैसा खर्च करने कीअपेक्षा जो अत्यंत बुरी हालत में जीवन जीते है उनके लिए वही पैसा खर्च किया जाता तो अधिक सार्थक होता। कबीर ने दुनिया की भलाई की बात की है। वे यह संदेश देते हैं कि हमारी किसी से दोस्ती हो या न हो परंतु किसी से दुश्मनी कभी भी न हो। किसी की किसी से भी दुश्मनी नहीं होगी तो दुनिया का भला होगा। यदि ऐसा होता तो न रूस एटम की खोज करता न अमेरिका एटम का प्रयोग करता-

"कबीरा खडा बजार में, माँगे सबकी खैर।
ना काहु से दोस्ती, ना काहु से बैर।।"

ऐसे कहनेवाले कबीर अपने समय में दुनिया की और सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई चाहते थे। आज के वर्तमान समय में भी मानवजाति के भलाई की आवश्यकता है। आज घर-घर में, गली-गली में, गाँव-गाँव, राज्य-राज्य में और राष्ट्र-राष्ट्र में महाभारत छिड गया है। हर एक, एक दूसरे के बारे में खैर चाहना दूर बैर चाहने लगा है। ऐसे माहौल और परिवेश में कबीर की बातें अत्यंत प्रासंगिक लगती है। कबीर की इन बातों में प्रासंगिकता दृष्टिगता होती है। तुलसी ने अपने काल को कलिकाल कहा है वास्तव में उस काल का परिवेश वैसा ही था और आज के वर्तमान परिवेश में भी इससे अधिक अंतर नहीं आया है। तुलसी कलिकाल में रामराज्य को लाने की अपेक्षा व्यक्त करते हैं। तुलसी लोकमंगल की कामना करनेवाले भक्त कवि है। तुलसी समाज में आदर्श लाना चाहते हैं। और इसलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति के रक्षक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र को मानस के माध्यम से तत्कालीन समाज के सामने एक आदर्श रखा है। जो आवश्यकत तुलसी के कालखंड में थी, क्या वही आवश्यकता आज के कालखंड की नहीं है? आज के कालखंड में भटके हुए समाज के सामने ऊँचे आदर्शों को रखने की आवश्यकता है। आज भी हमें राम के जैसे राजा की, राम के जैसे पुत्र की, राम के जैसे पति की आवश्यकता है। आज भी हमें सीता जैसे स्त्री की आवश्यकता है आज भी हमें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसे भाइयों की आवश्यकता है। आज भी हमें बिभीषण, सुग्रीव जैसे मित्रों की आवश्यकता है। आज भी हमें हनुमान की आवश्यकता है। आज भी हमें जूठे क्यों न हो परंतु मीठे बेर देनेवाली शबरी की आवश्यकता है। आज का हमारा समाज पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण के कारण दिशाहीन होता जा रहा है। आज का हमारा सामाजिक वातावरण भक्ति के वातावरण से भी बदतर हुआ है। अनेक प्रकार की समस्याओं ने समाज को ग्रस लिया है। भ्रूणहत्या, दहेजप्रथा, आतंकवाद, भाई-भाई का वाद, एड्स जैसी बीमारी की समस्या, नक्सलवाद, पति-पत्नी संबंधों मे तनाव, संबंधो में विघटन, अमीर-गरीब के बिच बढनेवाली दरार, किसानों

और मजदूरों की समस्या, भूख से बेहाल लोगों की समस्या, जैसी अनेक समस्याएँ आज भी हमारे सामने हैं। इस संदर्भ में तुलसीदास जी ने 'कवितावली' के एक पद में स्थिति का जो चित्र खींचा है वह चित्र आज भी एकदम सही है। तुलसी लिखते है-

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज, न चाकर के चाकरी।।
जीविका बिहीन लोग सीअ मान सोच बस कहें
एक एकन सों, कहाँ जाई का करी?"

आज के वर्तमान समय में भी इस प्रकार भी स्थिति दृष्टिगत होती है। किसान खेती तो करते है परंतु परिस्थिति से विवश होकर उन्हें आत्महत्या करनी पड रही है। भीख माँगनेवाले भिखारियों की संख्या दिन-ब-दिन बढती जा रही है और उन्हें भीख मिलना भी मयस्सर होने लगा है। लोग परम्परागत खेती व्यवसाय छोडकर व्यापार और नोकरी के पीछे लगे हैं परंतु आज स्थिति ऐसा है कि न व्यापारी का व्यापार ठीक तरह से चल रहा है न नोकरी चाहनेवाले को नोकरी मिल रही है। खेती व्यवसाय से आ रही निराशा, व्यापार न चलने की स्थिति, नोकरी न मिलने की संभावना और भीख का भी न मिलना ऐसी स्थिति में किया भी क्या जा सकता है? और आदमी कर भी क्या सकता है। जाये तो कहाँ जाये और करें तो क्या करें? यह आज के वर्तमान का यथार्थ है, जिस यथार्थ को तुलसी ने भक्तिकाल के समय अंकित किया था। अत: स्पष्ट है कि कबीरदास की तरह तुलसीदासजी के काव्य में भी प्रासंगिकता है।

कबीर और तुलसीदास की तरह कृष्णभक्त कवि सूरदास जी के काव्य में भी प्रासंगिकता दृष्टिगत होती है। कृष्ण गोकुल छोडकर मथुरा गये है। मथुरा का वैभव गोकुल से बहुत बडा है। गोकुल की तुलना में मथुरा कंचन की नगरी है। और दूर से देखने पर नगरी का आकर्षण अधिक लुभाता है। परंतु वहाँ का अनुभव लेने पर वास्तवता ध्यान में आती है और इस आकर्षण में फैसकर वहाँ गया हुआ व्यक्ति फिर आपने गाँव लौटना नहीं चाहता है। बम्बई जैसे नगर का आकषण हर किसी को होता है परंतु वहाँ के माहौल में रहने वाला व्यक्ति अनुभव लेने के पश्चात् गाँव लौटना चाहता है। मथुरा गयें हुए कृष्ण भी जब मथुरा का अनुभव लेते है। वहाँ की राजनीति का, राजनीति के दाँव पेंच का, राजनीतिक षडयंत्रों का, लोगों की मानसिकता का अनुभव लेने पर कृष्ण को अपना गोकुल ही प्यारा लगता है। जैसे आज बम्बई जानेवाले को अपना गाँव ही प्यारा लगता है। गोकुल की याद आनेवाले कृष्ण कहते हैं-

"उधौ, मोंहि ब्रज बिसरत नाहि....."

गोकुल की याद करनेवाला कृष्ण आज का वही युवक है, जो गाँव से बम्बई जैसे नगर गया है। जैसे कृष्ण को गोकुल भूलना कठिन है। वैसे युवक को भी गाँव को भूलना कठिन है। गोकुल में जैसा सरलपन है वैसा गाँव में भी है। मथुरा में जैसा षडयंत्र है वैसा बम्बई जैसे नगरों में है। अत: भक्ति काल में सूरदास ने गाँव-नगर की जो तुलना की है वह आज के परिवेश में भी सार्थक है। और सूर कृष्ण के माध्यम से गाँव की ओर लौटने का जो संदेश देते है, उस संदेश में गांधीज के 'गाँव की ओर चलने ' के नारे का दर्शन होता है। इस दृष्टि से सूरदास का यह पद आज के वर्तमान में भी प्रासंगिक लगता है। अत: स्पष्ट है कि कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, तथा अन्य भक्त कवि केवल आपने काल के ही नहीं, तो वर्तमान के भी कवि है। और उनका काव्य आज भी प्रासंगिक है।